

प्रवचन नं. १०२ श्लोक २९, गाथा ३६ दिनाङ्क ०७-१०-१९७८ शनिवार
आसोज शुक्ल ६, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, ३५ गाथा का कलश है न, २९ कलश, उसका भावार्थ। **यह परभाव के त्याग का दृष्टान्त....** क्या कहा ? कि धोबी के यहाँ कोई वस्त्र अपना नहीं परन्तु पर का लेकर सो गया था, तो जिसका वस्त्र था, वह आया, उसको जगाया कि यह वस्त्र मेरा है, तेरा नहीं तो उसने वस्त्र दृष्टि में से छोड़ दिया (कि) यह वस्त्र मेरा नहीं है, वैसे ही धर्मात्मा सन्तों ने-ज्ञानियों ने... क्या कहते हैं ? समझ में आया ? आहा ! उस वस्त्र के दृष्टान्त से - वस्त्र मेरा है, तेरा नहीं - ऐसा कहा तो उसने वस्त्र को छोड़ दिया। दृष्टि में से मेरा नहीं (ऐसा छोड़ दिया)। इसी प्रकार ज्ञानी-धर्मात्मा ने ऐसा कहा कि तेरी चीज जो आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें तुम पुण्य और पाप का भाव 'मेरा' होकर - मानकर सोते थे। अज्ञानी (थे), वह तेरी चीज नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

अपना आत्मा... सन्तों ने मुनियों ने, दिगम्बरों ने, अथवा केवलियों ने... यहाँ तो सन्त छद्मस्थ, पंचम काल की बात है न ? भावलिंगी सन्त दिगम्बर मुनि, (ने) उसको ऐसा कहा कि तुझमें जो यह शुभ-अशुभराग उत्पन्न होता है — दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग हिंसा, झूठ, चोरी का राग, वह तेरी चीज नहीं है, वह तो कर्म के भावक से उत्पन्न हुआ भाव्य-विकारदशा है, तेरी चीज तो उससे भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा सुनकर... यहाँ तो यह कहते हैं कि **परभाव के त्याग का दृष्टान्त कहा, उस पर दृष्टि पड़े उससे पूर्व,....** अर्थात् ज्ञानी ने कहा - भगवान ! तेरी चीज अन्दर पुण्य और पाप के राग से भिन्न है — ऐसा कहा तो कहते हैं उसको सुनकर भेदज्ञान हुआ या नहीं ? यह वाणी आयी, इससे पूर्व तत्काल भेदज्ञान हो गया, उसका अर्थ यह है। आहाहा ! यह वाणी सुनी, उससे पहले यह भेदज्ञान हुआ - इसका अर्थ यह। आहाहा ! वाणी सुनी, उससे भेदज्ञान नहीं हुआ, उसका अर्थ यह। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। अनन्त काल से कभी इसकी दरकार की ही नहीं। आहाहा ! सन्तों ने ऐसा कहा कि तेरी चीज अन्दर जो है, उसमें जो शुभ-अशुभराग उत्पन्न होता है,

वह तेरी चीज नहीं है। वह तो कर्म के भावक की उपाधिभाव है – ऐसा कहा तो यहाँ तो कहते हैं कि कहने से पहले ही भेदज्ञान हो गया। उसका अर्थ? कि सुनने से नहीं हुआ – ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! अन्तर में भगवान आत्मा, राग और पुण्य-पाप का भाव, वह विकृत-पर है, मैं तो ज्ञान-दर्शन-ज्ञाननेवाला आत्मा हूँ – ऐसा जहाँ अन्तर में भेदज्ञान हुआ, तब वह सुनने से पहले हो गया – ऐसा कहा। इसका अर्थ यह कि सुनने से नहीं हुआ, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? अन्दर भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसको जाना कि सन्तों ने तो ऐसा कहा कि रागादि – दया, दान, व्रत, भक्ति का राग भी विकार है, वह मेरी चीज में नहीं है। यह कर्म, निमित्त भावक है, उसका वह भाव्य है। आहाहा! वह भाव्य मेरी चीज नहीं, मेरा तो ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वभाव, उसरूप मैं हूँ, वह मेरा भाव्य और मेरा भावक मैं हूँ। आहाहा! बहुत कठिन बातें, बापू! कहो, नवरंगभाई!

यह प्रत्याख्यान-पचक्खाण, इसका नाम पचक्खाण, पचक्खाण का अर्थ? अन्दर जो रागभाव था, वह मेरी चीज नहीं है; मैं तो ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप हूँ – ऐसा राग से पृथक् अपना शुद्धस्वरूप का परिणमन – स्वसंवेदन हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान कहा जाता है। आहा! उसका नाम चारित्र कहा जाता है, उसका नाम राग का त्याग कहा जाता है। निमित्त से (कहा जाता है)। आहाहा! है?

परभाव के त्याग का दृष्टान्त कहा, उस पर दृष्टि पड़े उससे पूर्व,.... इसका अर्थ यह। यहाँ दृष्टि पड़ी उससे पहले। पूर्व अर्थात् यह हुआ तो उससे अन्दर भेदज्ञान नहीं हुआ – ऐसा कहा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शनपूर्वक प्रत्याख्यान, पचक्खाण... प्रत्याख्यान उसको कहते हैं, जहाँ यह वाणी सुनी, उससे अन्दर गये नहीं। आहाहा! मेरा स्वभाव आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूप-दर्शन उपयोगस्वरूप और राग में जो उपयोग जाता है, वह उपाधिभाव है, वह उपाधिभाव पर का है – ऐसा जानकर, अपना ज्ञानस्वभाव ज्ञान में रहा और राग में जुड़ान न हुआ, वह राग का त्याग हुआ, वह स्वरूप (में) स्थिर हुआ, उसको प्रत्याख्यान / चारित्र, संवर और निर्जरा धर्म कहते हैं – ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

अरे! यह तो अनन्त बार सुना है परन्तु अन्तर्दृष्टि नहीं की - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो सुना तो सही परन्तु सुनने से नहीं हुआ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं तो आनन्द ज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा हूँ। यह पर्याय में जो रागादि होते हैं, वह मेरी चीज नहीं है - ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन में भान हुआ, वहीं तत्काल राग में न जुड़कर, स्वरूप में स्थिर हुआ - ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है भाई! बापू! मार्ग कोई अलग प्रकार का है। आहाहा! समझ में आया? यह तत्काल हो गया। **क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि वस्तु को पर की जान लेने के बाद ममत्व नहीं रहता।** मैं तो आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप हूँ - ऐसा राग से भेद करके सम्यग्दर्शन हुआ और राग से पृथक्पने का परिणामन करके, राग से पृथक्पने का परिणामन करके अन्तर में प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! इसलिए लोग यह विवाद करते हैं न कि दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम हो, उससे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है, उससे चारित्र होता है - तो यहाँ तो यह कहते हैं कि जो व्रतादि का विकल्प राग है, वह पृथक् है, मेरी चीज नहीं और उसरूपमय में परिणमित नहीं होता, तब उसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐसी बात है, भाई! क्या हो? जगत् अनादि से हैरान हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

यह प्रसिद्ध है कि वस्तु को पर की जान लेने... ये शब्द भले हों परन्तु उसका भाव क्या है? आहाहा! सन्तों ने तो कहा, प्रभु! तू आत्मा तो ज्ञान-दर्शन और आनन्दस्वरूप है न प्रभु! यह राग का परिणाम आदि जो व्रत, शुभ-अशुभ होता है, वह तो द्रव्यस्वभाव का भाव नहीं है, वह वस्तु के स्वभाव का भाव नहीं है, वह भावक होकर भाव हुआ, वह नहीं है, वह तो कर्मनिमित्त भावक होकर भाव हुआ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। इसलिए लोगों को कठिन पड़ती है और इस कारण व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है - ऐसा चलाते हैं और लोगों को (कुछ) पता नहीं पड़ता बेचारों को। यहाँ तो व्यवहार के राग से मैं पृथक् हूँ - ऐसा भेदज्ञान पहले किया, फिर राग में परिणामन नहीं किया, और स्वरूप में स्थिर हुआ, तब उसे चारित्र अर्थात् प्रत्याख्यान - राग का त्यागरूप

परिणमन उसको कहते हैं। आहाहा! वस्तु को पर की जान लेने के बाद ममत्व नहीं रहता। आहाहा!

लड़के का विवाह हो और उसकी बारात चलती है न, क्या कहते हैं? बारात, तो कोई गृहस्थ के गहने लावे और पहने परन्तु वह जानता है कि यह मेरा नहीं है, दो दिन तक विवाह के लिये रखा है। कोई गृहस्थ हो, कोई कुटुम्बी करोड़पति हो, पाँच हजार-दस हजार का हार लिया हो तो हार पहनता है परन्तु उसके ख्याल में है, यह चीज मेरी नहीं है। मेरी लक्ष्मी में उसकी गिनती नहीं गिनी जाती है, मेरी लक्ष्मी है, उसमें यह गिनने में नहीं आता। आहाहा! वैसे ही भगवान आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वरूप का भान हुआ, वहाँ राग है, वह पर है - ऐसा भान हुआ तो थोड़ा राग रहा तो भी वह मेरा है - ऐसा नहीं है। फिर जब स्थिरता हुई, आहाहा! आहाहा! आत्मा, आत्मा में स्थिर हो गया... राग में परिणमन का भेदज्ञान तो पहले था, तदुपरान्त उसमें जुड़ान नहीं हुआ और आत्मा का उग्र आश्रय लेकर आत्मा में स्थिरता शान्ति, आनन्दादि उत्पन्न हुआ, उसका नाम प्रत्याख्यान, चारित्र, धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बापू! इसकी एक लाईन भी समझना... यह तो सिद्धान्त-वीतराग की वाणी है, यह कोई साधारण नहीं है। आहाहा! इन्द्र भी जिसे सुनने को आते हैं, सिंह भी सुनते थे भगवान की वाणी को। आहाहा! वह वाणी कोई अलौकिक है, उस वाणी में यह कहा है। कल कहा था न भाई! नहीं?

आगम, देव और गुरु। गुरु ने ऐसा कहा, सन्त-मुनि भावलिंगी आनन्द का वेदन भावलिंग में उत्कृष्ट भाव का बहुत वेदन है। सम्पूर्ण उत्कृष्ट नहीं परन्तु उसकी दशा को योग्य प्रचुर स्वसंवेदन है - आनन्द का वेदन है, वह मुनि। उन गुरु ने इसको सुनाया, बारम्बार कहा - प्रभु! यह राग और पुण्यभाव तेरा नहीं, तुझमें नहीं; यह तो उपाधिभाव, दुःखरूप भाव (और) तुम आनन्दरूप भाव, नाथ! वह आनन्दरूपी भाव, दुःखरूप परिणमे, वह तेरी चीज नहीं है। आहाहा! गुरु ने कहा तो फिर ऐसा लिया कि आगम वाक्य सुनकर, उसका अर्थ यह कि वाणी है, आगम है, परमागम है, वह सर्वज्ञ भगवान की वाणी और गुरु की वाणी है, वह सर्वज्ञ की वाणी है अर्थात् देव की वाणी आयी, गुरु की वाणी आयी, और शास्त्र आये। आहाहा! तीनों की यह आज्ञा है कि भगवन्त! तेरा स्वरूप पुण्य-

पाप के भाव - राग और विकार है, उससे तेरी चीज भिन्न है तो उसमें जा और राग में मत रुक। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

लोगों को कठिन पड़े, इसलिए लोगों को बेचारों को दूसरे रास्ते चढ़ा दिया। अज्ञान के रास्ते (कि) यह करो... यह करो... यह करो... भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, व्रत करो,... यह सब तो राग है। आहाहा! ऐसा करते-करते कल्याण हो जायेगा, राग करते-करते अर्थात् जहर पीते-पीते.... लहसुन खाते-खाते कस्तूरी का (अमृत का) डकार आयेगा... आहाहा! ऐसा है नहीं। आहाहा! भाई! जगत में अनेक प्रकार हैं।

वस्तु को पर की जान लेने के बाद.... यह पुण्य और पाप का भाव मेरा नहीं है, नवतत्त्व हैं न? तो नौ तत्त्व में जो शरीर, वाणी, मन आदि वह तो अजीवतत्त्व है, और दया, दान, व्रत का परिणाम, वह पुण्यतत्त्व है और हिंसा, झूठ, चोरी - वह पापतत्त्व है, दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व है; मेरा आत्मा तो भिन्न ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! वरना नव तत्त्व, नौ नहीं रहेंगे। आहाहा! ऐसा जानकर, रागरूप परिणामन की ममता थी, (वह) ममता छूट गयी। आहाहा! और आत्मा आनन्द में-ज्ञान में स्थिर - जम गया। इसका नाम प्रत्याख्यान, उसका नाम चारित्र, वह 'चारित्तं खलु धम्मो' वह धर्म है। समझ में आया? अब यह ३५ वें गाथा के कलश की बात हुई।

गाथा ३६

अथ कथमनुभूतेः परभावविवेको भूत इत्याशंक्य भावकभावविवेक-
प्रकारमाह-

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेत्ति॥३६॥

नास्ति मम कोऽपि मोहो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।
तं मोहनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका ब्रुवन्ति॥

इस खलु फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकेन सता पुद्गलद्रव्येणाभिनिर्वर्त्य-
मानष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकस्वभावभावस्य परमार्थतः परभावेन भावयितुमशक्यत्वा-
त्कतमोऽपि न नाम मम मोहोऽस्ति। किंचैतत्स्वयमेव च विश्वप्रकाशचंचुरविकस्व-
रानवरतप्रतापसंपदा चिच्छक्तिमात्रेण स्वभावभावेन भगवानात्मैवावबुध्यते यत्किलाहं
खल्वेकः ततः समस्तद्रव्याणं परस्परसाधारणावगाहस्य निवारयितुमशक्यत्वात्
मज्जितावस्थायामपि दधिखण्डावस्थायामिव परिस्फुटस्वदमानस्वादभेदतया मोहं
प्रति निर्ममत्वोऽस्मि, सर्वदैवात्मैकत्वगतत्वेन समयस्यैवमेव स्थितत्वात्। इतीत्थं
भावकभावविवेको भूतः।

अब, 'इस अनुभूति से परभाव का भेदज्ञान कैसे हुआ?' ऐसी आशंका
करके, पहले तो जो भावकभाव-मोहकर्म के उदयरूप भाव, उसके भेदज्ञान का
प्रकार कहते हैं—

कुछ मोह वो मेरा नहीं, उपयोग केवल एक मैं।
इस ज्ञान को ज्ञायक समय के, मोहनिर्ममता कहे ॥३६॥

*गाथार्थ : [बुध्यते] जो यह जाने कि [मोहः मम कः अपि नास्ति] 'मोह मेरा कोई भी (सम्बन्धी) नहीं है, [एकः उपयोगः एव अहम्] एक उपयोग ही मैं हूँ' — [तं] ऐसे जानने को [समयस्य] सिद्धान्त के अथवा स्व पर स्वरूप के [विज्ञायकाः] जाननेवाले [मोहनिर्ममत्वं] मोह से निर्ममत्व [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

टीका : निश्चय से, (यह मेरे अनुभव में) फलदान की सामर्थ्य से प्रगट होकर भावकरूप होनेवाले पुद्गलद्रव्य से रचित मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता, क्योंकि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावभाव का परमार्थ से पर के भाव द्वारा भाना^१ अशक्य है। और यहाँ स्वयमेव, विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने में चतुर और विकासरूप ऐसी, निरन्तर शाश्वत् प्रतापसम्पत्तियुक्त है; ऐसा चैतन्यशक्ति मात्र स्वभावभाव के द्वारा, भगवान आत्मा ही जानता है कि परमार्थ से मैं एक हूँ इसलिए, यद्यपि समस्त द्रव्यों के परस्पर साधारण अवगाह का (- एकक्षेत्रावगाह का) निवारण करना अशक्य होने से मेरा आत्मा और जड़, श्रीखण्ड की भाँति, एकमेक हो रहे हैं तथापि, श्रीखण्ड की भाँति, स्पष्ट अनुभव में आनेवाले वाद के भेद के कारण, मैं मोह के प्रति निर्मम ही हूँ; क्योंकि सदा अपने एकत्व में प्राप्त होने से समय (आत्मपदार्थ अथवा प्रत्येक पदार्थ) ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है। (दही और शक्कर मिलाने से श्रीखंड बनता है उसमें दही और शक्कर एक जैसे मालूम होते हैं तथापि प्रगटरूप खट्टे-मीठे स्वाद के भेद से भिन्न-भिन्न जाने जाते हैं; इसी प्रकार द्रव्यों के लक्षण भेद से जड़-चेतन के भिन्न-भिन्न स्वाद के कारण ज्ञात होता है कि मोह कर्म के उदय का स्वाद रागादिक है वह चैतन्य के निजस्वभाव के स्वाद से भिन्न ही है।) इस प्रकार भावकभाव जो मोह का उदय उससे भेदज्ञान हुआ।

भावार्थ : यह मोहकर्म जड़ पुद्गल द्रव्य है; उसका उदय कलुष (मलिन) भावरूप है; वह भाव भी, मोहकर्म का भाव होने से, पुद्गल का ही विकार है। यह भाव का भाव जब चैतन्य के उपयोग के अनुभव में आता है, तब उपयोग भी विकारी होकर रागादिरूप मलिन दिखायी देता है। जब उसका भेदज्ञान हो कि 'चैतन्य की

* इस गाथा का दूसरा अर्थ यह भी है कि - किञ्चित्मात्र मोह मेरा नहीं है, मैं एक हूँ ऐसा उपयोग ही (-आत्मा ही) जाने, उस उपयोग को (आत्मा को) समय के जाननेवाले मोह के प्रति निर्मल (ममता रहित) कहते हैं।

१. भाना = भाव्यरूप करना; बनाना।

शक्ति की व्यक्ति तो ज्ञानदर्शनोपयोगमात्र है और यह कलुषता राग-द्वेषमोहरूप है वह द्रव्यकर्मरूप जड़ पुद्गलद्रव्य की है, ' तब भावकभाव जो द्रव्यकर्मरूप मोह के भाव उससे अवश्य भेदभाव होता है और आत्मा अवश्य अपने चैतन्य के अनुभवरूप स्थित होता है।

गाथा - ३६ पर प्रवचन

अब, 'इस अनुभूति से...' आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्य प्रभु की अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभूति-आत्मा आनन्दस्वरूप — ऐसे आनन्द के अनुसरण करके, अपनी दशा में आनन्द की-ज्ञान की अनुभूति हुई, शुद्धस्वभाव आंशिक चारित्र की दशा हुई, यह अनुभूति, वीतरागी पर्याय है। आहाहा! यह प्रत्याख्यान, वीतरागी पर्याय है - ऐसे यहाँ अनुभूति, वीतरागी पर्याय है, उसकी बात विशेष करते हैं। आहाहा! आहाहा! 'इस अनुभूति से परभाव का भेदज्ञान कैसे हुआ?'.... है अन्दर टीका में अथ कथमनुभूतेः परभावविवेको भूत इत्याशंक्य, आशंका, हों! शंका नहीं। आहाहा!

'इस अनुभूति से परभाव का भेदज्ञान कैसे हुआ?' पुण्य और पाप का भाव-विकार और उससे भगवान भिन्न — ऐसी अनुभूति कैसे हुई? आहाहा! बताया तो है, विशेष स्पष्ट विशेष करना है। प्रत्याख्यान के उपरान्त अन्दर स्थिरता विशेष बढ़ाना है। आहाहा! ऐसी आशंका करके.... आशंका अर्थात् समझने की अभिलाषा; शंका नहीं। तुम कहते हो, वह झूठ है — ऐसा नहीं, परन्तु तुम कहते हो, वह मेरी समझ में नहीं आया। तुम क्या कहते हो? इस पुण्य-पाप के भाव से भगवान भिन्न (ऐसा) भेदज्ञान हुआ और अनुभूति हुई - क्या कहते हैं आप? मुझे समझ में नहीं आया, प्रभु! आहाहा! शंका नहीं करता है। शंका का अर्थ (यह है कि) तुम कहते हो, वह झूठ है (किन्तु यहाँ) ऐसा नहीं है परन्तु तुम कहते हो, वह मेरी समझ में नहीं आया, उसका नाम आशंका है। आहाहा! शिष्य की मर्यादा कितनी ली है, देखो! आहाहा! ऐसी आशंका करके, पहले तो जो भावकभाव-मोहकर्म के उदयरूप भाव,.... भावक का अर्थ समझे? भावक अर्थात् जो कर्म है न मोह, वह भावक। उसके लक्ष्य से-उसके निमित्त के वश से जो विकार

पुण्य-पाप का भाव होता है, वह भावक का भाव है, ज्ञायक का भाव नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! प्रवीणभाई! वहाँ थान-वान में मिले नहीं, लादी में मिले वैसा नहीं - ऐसी बात है, बापू! जिसे जन्म-मरण का अन्त लाना हो, आहाहा! तो कहते हैं प्रभु! मेरी आशंका है कि इस अनुभूति से पर का भेदज्ञान कैसे हुआ? आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव हुआ, उस अनुभूति से राग का भेदज्ञान कैसे हुआ? उसमें राग भिन्न कैसे पड़ गया? आहाहा! समझ में आया? **भावकभाव-मोहकर्म के उदयरूप भाव, उसके भेदज्ञान का प्रकार कहते हैं—**

गत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
 तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥३६॥
 कुछ मोह वो मेरा नहीं, उपयोग केवल एक मैं।
 इस ज्ञान को ज्ञायक समय के, मोहनिर्ममता कहे ॥३६॥

पहले गाथार्थ लेते हैं। जो यह जाने कि... जो आत्मा ऐसा जाने कि 'मोह मेरा कोई भी (सम्बन्धी) नहीं है,....' आहाहा! मोह शब्द से परसन्मुख की सावधानी का विकारभाव, वह मेरा नहीं है। आहाहा! मेरी ओर की सावधानी का भाव शुद्धता आनन्द आदि - वह मेरा भाव है। आहाहा! समझ में आया? जो यह जाने कि मोह मेरा कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, राग का विकल्प चाहे तो दया, दान का, अरे! भक्ति का या तीर्थकर गोत्र बाँधे ऐसा भाव भी (हो), वह मेरा नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह तो राग है, बन्ध का भाव, वह कोई धर्म नहीं है, बन्ध का कारणरूप भाव वह तो विकार है। आहाहा! वह भावक का भाव है, मेरा नहीं। आहाहा! मैं भाव-ज्ञायकस्वरूप भावक होकर पर्याय होती है, यह वह नहीं, वह तो कर्म का भावक होकर भाव हुआ है, वह मेरी चीज नहीं है। अरे! इतना सब भरा है।

यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ऐसा भेदज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? जो यह जाने कि 'मोह मेरा कोई भी (सम्बन्धी) नहीं है, एक उपयोग ही मैं हूँ'.... मैं तो जानन-देखन, ज्ञाता-दृष्टा, वह उपयोग ही मैं हूँ। आहाहा! धर्मी को ऐसा भेदज्ञान होता है। सम्यग्दृष्टि को-ज्ञानी को ऐसा भेदज्ञान होता है (कि) मैं तो जानन-देखन

उपयोगस्वरूप हूँ, यह परतरफ का जितना भाव होता है, (पर की) सावधानी में (जितना भाव होता है) वह मेरा नहीं। मेरे स्वभाव की सावधानी से जो भाव हुआ, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया ?

‘एक उपयोग ही मैं हूँ’.... भाषा देखो! ‘उपयोग: एव’ है न? ‘उपयोग: एव’ निश्चय, सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा में जानन-देखन हूँ वही मैं हूँ। यह राग और द्वेष का विकल्प जो उत्पन्न होता है, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग जो उत्पन्न होता है — देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान का विकल्प उस ओर का और छह काय की दया के भाव का विकल्प। आहाहा! वह सब मेरी चीज नहीं है। मैं तो ज्ञान-दर्शन उपयोग ही मैं हूँ, वह ज्ञान-दर्शन उपयोग ‘ही’ मैं हूँ। कथंचित् यह हूँ और कथंचित् यह हूँ — ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? उपयोग ही मैं हूँ। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि - धर्म की पहली शुरुआतवाला, धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट करनेवाला ऐसा जानता है कि जानन-देखन उपयोग वह मैं हूँ, वही मैं हूँ। राग भी मैं हूँ और यह भी मैं हूँ - ऐसा नहीं — यह अनेकान्त है। आहाहा! यह हूँ। आहाहा! और ऐसे जानने को सिद्धान्त के अथवा स्व पर स्वरूप के जाननेवाले मोह से निर्ममत्व कहते हैं।... जानते हैं। ऐसे जीव को मोह से ममत्वरहित जानते हैं। किसको ? कि जो कोई अन्तर में अपने ज्ञान-दर्शन-उपयोगस्वरूप मैं हूँ, जो ऐसा जानकर अन्दर रहता है, उसको मुनि-सन्त, मोह से निर्ममत्व कहते हैं। वे ज्ञानी उसको मोह से निर्ममत्व कहते हैं - ऐसी बात है यह। बापू! कठिन बात भाई! ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़ गया परन्तु उसमें कुछ हुआ नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं आहाहा! ऐसे जानने का सिद्धान्त का या स्व-पर स्वरूप के ‘समयस्य’ है न? ‘समयस्य’ — समय अर्थात् सिद्धान्त अथवा समय अर्थात् स्व-पर स्वरूप को जाननेवाले सन्त, मोह से निर्ममत्व जानते हैं, कहते हैं। आहाहा! जिसने अपना स्वभाव जानन-देखन शुद्ध उपयोग मैं हूँ — ऐसा आया, फिर राग मेरा नहीं है, वह तो अन्दर आ गया। ऐसा जो हुआ, उसे सन्त, मोह से निर्ममत्व कहते हैं। आहाहा! यह तो इतना यहाँ आया कि मैं एक उपयोग ही हूँ, मैं यह नहीं हूँ - ऐसा पहले नहीं आया।

परन्तु ऐसे जानने को — ऐसे जाननेवाले जीव को, सिद्धान्त स्व-पर जाननेवाले सन्त-दिगम्बर मुनि... आहाहा! भावलिंगी सन्त ऐसा कहते हैं कि जो कोई आत्मा, मैं जानन-देखन ही हूँ — ऐसे उपयोग में रहा, उसे ज्ञानी-सन्त मोह से निर्ममत्व कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। अद्भुत एक-एक गाथा! परन्तु लोग जरा शान्ति से सुने तो उन्हें.... ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रगट करने के लिए और उसके साथ फिर प्रत्याख्यान प्रगट हो, उसकी विशेषता... उस अनुभूति का वर्णन विशेष करते हैं। ३६, ३७, ३८ में पूरा कर देंगे। आहाहा!

टीका - निश्चय से, (यह मेरे अनुभव में) फलदान की सामर्थ्य से प्रगट होकर.... पाठ में तो ऐसा इतना लिया है कि मैं तो ज्ञान उपयोग हूँ। अब टीकाकार विशेष स्पष्ट करते हैं।

श्रोता : मोह मेरा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसका ही अर्थ विशेष किया है। पाठ में तो इतना लिया। समझे? **णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।** उपयोग ही मैं हूँ — ऐसा आया। **णत्थि मम को वि मोहो** यह विशेष स्पष्टीकरण टीका में करते हैं। आहा! यह तो पहले आ गया न कि मेरा कोई सम्बन्धी, यह तो आ गया। रागादि मेरे कोई सम्बन्धी नहीं, यह तो ठीक - गाथार्थ में आ गया। मैं तो ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप ही हूँ; मैं यह नहीं, यह पहले आ गया। आहाहा! परतरफ का जो विकल्प-वृत्तियाँ उठती हैं, वह मैं नहीं; चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, वह मैं नहीं हूँ, बस इतना वहाँ! अब मैं क्या हूँ? मैं तो ज्ञान-दर्शन-उपयोग ही मैं हूँ। आहाहा! जानना-देखना उपयोग ही मैं हूँ। आहाहा! ऐसे जीव को मोह निर्ममत्व कहते हैं।

अब टीका **निश्चय से, (यह मेरे अनुभव में) फलदान की सामर्थ्य से प्रगट होकर भावकरूप होनेवाले पुद्गलद्रव्य से रचित मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता,....** आहाहा! मोहकर्म जड़ है, उससे रचित विकारभाव और वह मेरे अनुभव में फलदान की सामर्थ्य से प्रगट होकर.... आहाहा! मेरी पर्याय में भी भावककर्म से विकारभाव फलदान मेरी पर्याय में आता है। आहाहा! वह **पुद्गलद्रव्य से रचित मोह मेरा कुछ भी नहीं है।**

आहाहा! वह तो कर्म से रचित है, आत्मा से रचित नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य-आनन्दस्वरूप की रचना से विकार नहीं। कर्म अर्थात् भावक से उत्पन्न हुआ, मेरी पर्याय में (उत्पन्न हुआ) फलदान शक्ति विकार, मोह वह उसका-भावक का भाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है भाई! यों तो साधारण पढ़ जाये और सब बातें करे परन्तु अन्दर क्या लगाना, कठिन है भाई... आहाहा!

धर्मी, ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, भेदज्ञानी को ऐसा अनुभव में आता है कि जो इस पर्याय में फलदान सामर्थ्यरूप से प्रगट होकर भावकरूप पुद्गल से रचित मोह है, वह मेरा कुछ भी नहीं लगता - राग के साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, मेरा सम्बन्ध तो ज्ञायकभाव के साथ सम्बन्ध है। आहाहा! वह चाहे तो दया, दान, व्रतादि का राग, वह राग है; उस राग के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी भी सादी भाषा है, गुजरातीवालों को समझ में आये ऐसी है। आहाहा! भावकभाव होनेवाला पुद्गलद्रव्य से रचित, उस जड़ से रचित आहाहा! स्वभाव से रचित नहीं, भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु से रचित तो आनन्द आता है। तो यह तो जड़कर्म से रचित विकार-विकृतभाव... आहाहा! **मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता,....** मोह के साथ मुझे कोई भी सम्बन्ध नहीं है - ऐसा। कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

पुद्गलद्रव्य से रचित मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता, क्योंकि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावभाव का.... क्यों? मैं तो टंकोत्कीर्ण चैतन्य अनघड़ित घड़तर, आहाहा! चैतन्यज्योतिस्वरूप भगवान टंकोत्कीर्ण, जैसे टाँकी से खोदकर चीज निकाले ऐसी चीज मैं अन्दर हूँ। शाश्वत् ज्ञायक चैतन्यमूर्ति मैं हूँ — ऐसे धर्मी अपने स्वभाव को **एक ज्ञायकस्वभावभाव** देखो, एक ज्ञायकस्वभाव भाव, विकारभाव था, वह भावक का अनेकरूप उपाधिभाव था। आहाहा! **टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव भाव**, ज्ञायकस्वभाव भाव, ज्ञायकस्वभाव भाव। वह भावक का विकारी भाव - पुण्य-पाप का भाव, भावक का विकारी भाव। परन्तु मेरा स्वभाव **ज्ञायकस्वभाव भाव का परमार्थ से पर के भावों द्वारा भाना अशक्य है**। भाव्यरूप करना / बनाना... देखा, है? आहा! इस मेरी पर्याय में भाव्यरूप बनाना अशक्य है। आहाहा!

कर्म भावक है, उसके (निमित्त से) उत्पन्न होता विकारी पुण्य-पाप का भाव होता है, वह भाव्य, तो मेरा उस भाव्यरूप होना अशक्य है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़ता है इसलिए क्या करें? **एक ज्ञायकस्वभावभाव का परमार्थ से पर के भावों द्वारा....** ये पर के भाव हैं। आहाहा! उसे भाना **एक ज्ञायकस्वभावभाव के द्वारा पर का भाव द्वारा भाव्यरूप होना अशक्य है।**

फिर, धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान के काल में अन्तर में एक स्वभाव-ज्ञायक स्वभावभावरूप में, इस भावक का जो विकारी भावरूप भाव्य मेरे में हो, (यह) अशक्य है। आहाहा! है? यह तो अध्यात्म शब्द है बापू! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है, यह तो परमात्मस्वरूप की कथा... आहाहा! धर्मी, भेदज्ञान के काल में... यह तो समझावे तब तो ऐसा समझावे न, वह कहीं मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ... यह तो विकल्प है। अन्दर ऐसा होता है। **एक ज्ञायकस्वभावभाव का परमार्थ से पर के भाव द्वारा भाना अशक्य है**, वह भी विकल्प है, अन्दर होता है भाव, मेरा स्वभावभाव है, वह पर के कारण से भाव्य होता है, वह भाव्य मेरा नहीं। इतना ज्ञान में-अनुभव में आता है, बस! यह बात करते हैं तो भेद और विकल्प से करते हैं। आहाहा! भेदज्ञान के काल में यह मैं और यह मेरा नहीं; यह मैं यह मेरा नहीं, यह भी एक विकल्प है। आता है न भेदज्ञान में आता है, कलश में, भेदज्ञान भी विकल्प है, केवल ज्ञान की भाँति नहीं, कलश में आता है परन्तु यहाँ समझाने में क्या समझाये? किस प्रकार समझाये? परन्तु इसे अन्तर में ज्ञायकभाव भगवान आत्मा की ओर का झुकाव, वह मैं हूँ — ऐसा अनुभव में आया बस। अब यह विशेष समझाया कि इस काल में भावकर्म के भावक से भाव्य होने में मेरी शक्ति अशक्य है, मेरा स्वभाव असमर्थ है। विकाररूप होना, यह मेरा स्वभाव अशक्य है, मेरे स्वभाव में ऐसी सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। अरे...!

परमार्थ से पर के भाव द्वारा भाना अशक्य है।... आहाहा! मैं तो समकित्ती ज्ञानी, भेदज्ञानी, अन्तर में भावरूप परिणमते हैं तो ऐसा कहते हैं कि मैं तो एक स्वभावभाव - ज्ञायकभाव से राग के भावरूप परिणमना, वह अशक्य है। मैं तो मेरे ज्ञायकभाव स्वभावभावरूप परिणमूँ, वह मेरा शक्य है। आहाहा!

श्रोता : अशक्य है या असम्भव है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; परिणमते ही नहीं । सम्यग्दृष्टि की यहाँ चारित्र की बात लेना है न ? सम्यग्दर्शन में परिणमते थे, जब सम्यग्दर्शन था तब पर्याय में, परन्तु वह पर्याय है, वह भावक का भाव्य है । अब यहाँ आगे जाना है न ? आहाहा ! आहाहा ! यहाँ तो प्रत्याख्यान और भेदज्ञान बताना है न ! परद्रव्य से **णत्थि मम को वि मोहो** ऐसा बताना है न ! **मोहणिम्ममत्तं** बताना है न, आहाहा ! धीरे से समझना भाई ! यह तो अन्दर की चीज है । यह तो कहीं बाहर से मिले, ऐसी चीज नहीं है । आहाहा ! बाहर में है ही नहीं । जहाँ अन्दर में है, वहाँ बाहर में कहाँ है ? यहाँ तो राग और पुण्य के परिणामरूप भी मेरा भाव परिणमे, वह अशक्य है । आहाहा ! ऐसा होकर - मोह के प्रति निर्ममत्व होकर, स्वभाव के प्रति सावधान होकर स्थिर होता है । आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है । साधारण लोगों को तो पकड़ में नहीं आवे कि यह क्या कहते हैं ? दूसरा तो समझ में आवे - लो, व्रत करो, भक्ति करो, यात्रा करो - ऐसा समझ में तो आता है । क्या समझना उसमें ? वह तो राग है, राग करो, राग करो... करो... करो... उसमें क्या है ? उसमें तो मरो है । आहाहा !

भाषा कैसी है देखो ? **पुद्गलद्रव्य से रचित मोह....** पर्याय में रागादि है, पुद्गल द्रव्य से - जड़द्रव्य से रचित मोह । आहाहा ! क्योंकि मोहभाव, वह जड़ है; चैतन्य नहीं । विकारी मोहभाव, वह जड़ है, जड़कर्म से रचित मोहभाव, आहाहा ! **मेरा कुछ भी नहीं लगता,....** आहाहा ! **क्योंकि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावभाव का परमार्थ से....** वास्तव में, परमार्थ से द्रव्यस्वभाव से, पर के भाव द्वारा भाना अशक्य है ।.... आहाहा ! नीचे जरा अर्थ किया है न ? दूसरा जरा । इस गाथा का दूसरा अर्थ यह भी है । शब्दार्थ है न - **किञ्चित्मात्र मोह मेरा नहीं है, मैं एक हूँ, ऐसा उपयोग ही (आत्मा ही) जाने....** आत्मा ही जाने कि आत्मा को - समय के जाननेवाले ऐसे आत्मा को, आत्मा के जाननेवाले **मोह के प्रति निर्ममत्व कहते हैं** । ऐसा गाथा का अर्थ इस प्रकार भी होता है । आहाहा !

एक ज्ञायकस्वभावभाव का परमार्थ से पर के भाव द्वारा भाना अशक्य है ।....
आहाहा !

श्रोता : अशक्य या असम्भव ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशक्य कहो या असम्भव कहो । नहीं है, वह कहो तो एक की एक बात है, यह तो शब्द में अन्तर पड़ा । मेरा ज्ञायकस्वभावभाव विकाररूप होने में असम्भव है-अशक्य है, अलायक है, अयोग्य है (सभी एकार्थ हैं ।) समझ में आया ? यह तो स्थिरता की बात करना है न ? प्रत्याख्यान का-भेदज्ञान का विशेष स्पष्टीकरण करते हैं, अनुभूति का विशेष-भेदज्ञान का स्पष्टीकरण करते हैं । आहाहा ! यह आया न ? पहले आया न ? इस अनुभूति से.... आया न ? परभाव का भेदज्ञान कैसे हुआ ? ऐसा प्रश्न हुआ है न ? आहाहा ! यहाँ स्वयमेव, विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने में चतुर.... आहाहा ! मैं, मैं, मेरी चीज विश्व को प्रकाशित करने में चतुर और विकासरूप.... ऐसी, निरन्तर शाश्वत् प्रतापसम्पत्तियुक्त है; ऐसा चैतन्यशक्ति मात्र स्वभावभाव के द्वारा,.... अपनी बात करते हैं न ? भगवान आत्मा तो समस्त को जानने-देखनेवाला है । सर्वज्ञ हुआ वह यहाँ नहीं; यहाँ तो आत्मा सर्व को जानने-देखनेवाला है, बस इतना ।

स्वयमेव अपने से । यह विश्व है इसलिए ऐसा नहीं । विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने में चतुर और विकासरूप ऐसी,.... आहाहा ! निरन्तर शाश्वत् प्रतापसम्पत्तियुक्त है;.... विकासरूप ऐसी निरन्तर शाश्वत् प्रतापसम्पत्तियुक्त है, ऐसा चैतन्यशक्तिमात्र.... आहाहा ! ऐसा मेरा चैतन्यशक्तिमात्र, आहाहा ! कैसी चैतन्यशक्ति है ? कि स्वयमेव, विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने में चतुर और विकासरूप ऐसी, निरन्तर शाश्वत् प्रतापसम्पत्तियुक्त है; ऐसा चैतन्यशक्तिमात्र स्वभावभाव के द्वारा,.... ऐसा स्वभावभाव चैतन्यशक्तिमात्र, चैतन्य स्वभाव का स्वभाव द्वारा, चैतन्यशक्ति के स्वभाव द्वारा भगवान आत्मा ही जानता है.... आहाहा ! देखो ! भगवान आत्मा ही जानता है । कि परमार्थ से मैं एक हूँ.... यहाँ सर्वज्ञ की बात नहीं है । यह आत्मा सर्व विश्व को जानने-देखने की शक्तिवाला है ।

ऐसे चैतन्यशक्तिमात्र, ऐसे चैतन्यशक्तिमात्र, उसमें रागादि कुछ नहीं, ऐसा स्वभावभाव के द्वारा भगवान आत्मा ही जानता है.... आहाहा ! कि परमार्थ से मैं एक

हूँ.... ऐसा समझ में आये, मैं परमार्थ से मैं एक हूँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं है, परन्तु समझावे तब क्या करे ? समझाना किस प्रकार ? वह अन्दर में परमार्थ एकरूप ज्ञायक चैतन्यशक्ति ऐसा स्वभाव, विश्व की सारी चीज-लोकालोक, सबको जानने-देखनेवाला मैं, ऐसी मेरी शक्ति । आहाहा !

ऐसा चैतन्यशक्तिमात्र स्वभावभाव के द्वारा, भगवान आत्मा ही जानता है.... ऐसा चैतन्यशक्तिमात्र स्वभावभाव के द्वारा, भगवान आत्मा ही जानता है । आहाहा ! इन्द्रियों से और मन से जानता है, वह नहीं - यहाँ ऐसा कहते हैं । **चैतन्यशक्तिमात्र स्वभावभाव के द्वारा भगवान आत्मा ही जानता है ।** आहाहा ! चैतन्यशक्ति स्वभावभाव जो सर्व-समस्त वस्तु / विश्व का जानने-देखनेवाला, ऐसा मेरा चैतन्यशक्तिमात्र स्वभाव के द्वारा **भगवान आत्मा ही जानता है कि परमार्थ से मैं एक हूँ....** मैं तो एक स्वरूपी ज्ञाता-दृष्टा एक ही हूँ । दूसरे का कोई सम्बन्ध मुझमें नहीं है । आहाहा !

इसलिए, यद्यपि समस्त द्रव्यों के परस्पर साधारण अवगाह.... एक क्षेत्र में रहते हैं, एक क्षेत्र में जहाँ भगवान आत्मा है, वहाँ धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल भले ही, एक ही क्षेत्र में छह द्रव्य रहे हैं थोड़े, पूरा द्रव्य भले ही नहीं धर्मास्ति (आदि) । जहाँ चैतन्यशक्ति स्वभावभाव, वहाँ दूसरे द्रव्य एक क्षेत्र में हैं, अनन्त परमाणु हैं, धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, असंख्य कालाणु, आकाश पूरे लोक के असंख्य भाग में... एक परस्पर साधारण अवगाह, एक क्षेत्रावगाह, साधारण अवगाह, **निवारण करना अशक्य होने से....** यह निवारण करना अशक्य है, एक ही क्षेत्र में जहाँ भगवान चैतन्यशक्तिमात्र भगवान आत्मा जानने-देखने के भाववाला है, उसी क्षेत्र में दूसरे पदार्थ भी हैं, तो उसका अभाव करना अशक्य है, निवारण करना अशक्य है ।

देखो, उसमें ऐसा कहा था कि विकारपने परिणमना मुझमें अशक्य है और एक क्षेत्र में दूसरी चीज है तो उसको हटा देना अशक्य है । हो, आहाहा ! टीका तो टीका है न ! एक क्षेत्र में होने पर भी, मैं तो ज्ञायकस्वभाव एकरूप मैं, चैतन्यवाला मैं । यह वहाँ है, उसको भी जानने-देखनेवाला मैं और एक क्षेत्र है तो उसे दूर करना - ऐसा अशक्य है । सभी है,

हो। आहाहा! फिर शब्द क्या लिया है? **यद्यपि समस्त द्रव्यों के परस्पर साधारण अवगाह....** आत्मा है, वहाँ पर है और पर है, वहाँ आत्मा है। है न? परस्पर अवगाह हो एक क्षेत्र में... आहाहा! देखो! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं ऐसी बात है नहीं। जाननेवाला-देखनेवाला एक स्वरूप, वहीं दूसरा द्रव्य है, एक क्षेत्र में। आहाहा! **समस्त द्रव्यों के....** अनन्त द्रव्य... आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा है, वहाँ अनन्त-अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध-ऐसे अनन्त स्कन्ध हैं। एक-एक प्रदेश में अनन्त परमाणु के स्कन्ध, ऐसे अनन्त स्कन्ध हैं, ऐसे असंख्य प्रदेशी भगवान हैं, वहाँ अनन्त-अनन्त परमाणु के स्कन्ध, ऐसे अनन्त स्कन्ध एक क्षेत्रावगाह है, एक क्षेत्र के अवगाहना में है। अरे! ऐसी बातें हैं! तो भी उसका अभाव करना अशक्य है परन्तु उसे अपने में रहकर स्वयं को जानना, उस जानने में वह जानना आ जाये और रागरूप होना, वह अशक्य है परन्तु वह जाननेवाला स्वयं को जानते हुए एक क्षेत्रावगाह में है, उन्हें जाने यह तो मेरा स्वभाव है। समस्त विश्व को जानना यह तो मेरा स्वभाव है। आहाहा! **अवगाह का (- एकक्षेत्रावगाह का) निवारण करना अशक्य होने से मेरा आत्मा....** अब मेरा आत्मा क्या है - यह बात विशेष आयेगी।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)